Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

दल-बदल कानून की प्रासंगिकता

कमलेश पवार*

* शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारत को विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। हमारे देश का लोकतंत्र संप्रभु, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, लांकतांत्रिक गणराज्य आदि सिद्धांतों पर निर्भर है।

भारत में लोकतंत्र का अर्थ केवल वोट देने का अधिकार ही नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता को सुनिश्चित करना है, किन्तु आज भी सही मायने में लोकतंत्र को परिभाषित किया जाना अनिवार्य है। आज़ादी के बाद देश में कई समस्याएँ देखने को मिली जिनमें निरक्षरता, गरीबी, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, नक्सलवाद, राजनैतिक अपराधीकरण, जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, क्षेत्रवाद आदि। इनमें से एक प्रमुख समस्या बनकर दल-बदल हमारे सामने आया है। आये दिन संसद व विधानसभाओं में दल-बदल जैसे मुझे भारतीय लोकतंत्र को दूषित कर रहे हैं।

भारतीय दलीय व्यवस्था लंबे समय तक विकृत रही। केन्द्र में सरकारों के पतन के लिए मुख्यतः दल-बदल ही उत्तरदायी रहा। भारतीय संविधान का ५२वाँ संविधान संशोधन विधेयक १९७३ में प्रस्तुत किया गया था परन्तु वह पारित नहीं हो सका। राजनैतिक दलों के विकृत स्वरूप में निरन्तर वृद्धि होती गई।

भारतीय राजनीति में सर्वाधिक प्रचलित राजनीतिक खेल का नाम है दल-बदल। एक पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में शामिल हो जाना, सदन में सत्ता दल छोड़कर विरोधी दल में शामिल हो जाना, अपना खेमा बदल लेना दल-बदल की मान्य परिभाषा रही है।

दल-बदल का सहज अर्थ अपने दायित्व को त्यागना या उससे मुकरना है, किन्तु राजनीति में विविध स्थितियों में इसके विविध स्वरूप होते हैं। जैसे जिस दल के अधीन चुनाव लड़े उस दल का त्याग, सदन के भीतर पाला बदलना, किसी दूसरे दल में शामिल होने के लिए अपने दल को छोड़ना फिर एक निर्दलीय की तरह रहना या एक नया दल या गुट बनाना। इस प्रकार की दल-बदल की परिभाषा सर्वविदित है।

विधायी संस्थाओं के प्रारंभ से ही दल-बदल की घटनाओं का प्रारंभ माना जा सकता है। भारत सरकार अधिनियम १९३५ के अधीन सन् १९३७ के चुनाव में कांग्रेस को संयुक्त प्रान्त में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ, फिर भी मुख्यमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत ने मुस्लिम लीग के कुछ सदस्यों को दल-बदलने और काग्रेस संगठन को छोड़ने का फैसला किया, उस समय सदस्यों की संख्या बहुत अधिक थी, केवल उत्तरप्रदेश की संख्या ही ५० थी, इनमें आचार्य नरेन्द्र देव ने दल बदल करके जन कांग्रेस नामक एक नये दल की स्थापना की।

१९५६ में तीव्र उठापठक और पैतरेबाजी के पश्चात् ९८ विधायकों ने, दल-बदल किया। सन् १९६७ के पूर्व आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी, अशोक मेहता, रफी अहमद किदवई, टी. प्रकाशम् व डॉ. रघुवीर सिंह जैसे दिग्गज नेताओं ने अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धतायें बदली।

सन् १९५७ से १९६७ के दशक में ५४२ दल-बदल की घटनाएँ हुई। अकेले १९६७ में ही ४३८ सदस्यों ने दल-बदल किया। १९६७ से १९७३ की अवधि में २७०० विधायकों ने विभिन्न स्वार्थों से दल-बदल किया। इनमें से १५ मुख्यमंत्री बने तथा २१२ को मंत्रीपद प्राप्त हुआ। इस प्रकार संपूर्ण देश में दल-बदलुओं की संख्या ४००० से भी अधिक हो गई। व्यापक दल-बदल के कारण ६ राज्यों में सरकारें बिगड़ी और बनी। ६ राज्यों में राष्ट्रपति शासन घोषित हुआ और ४ विधानसभाओं को भंग कर मध्यावधि चुनाव कराये गये।

चौथे आम चुनाव के बाद दल-बदल चरम-सीमा पर पहुँच गया। यू.एन.आई. सर्वेक्षण के अनुसार दिसम्बर १९६७ तक ९ प्रतिशत से भी अधिक राज्यों के विधायकों ने अपना दल बदला। दल-बदल की प्रवृत्ति १९६८ में बहुत जोरों पर थी, जिसके फलस्वरूप कई सरकारें टूटी, कई बनी और कई प्रान्तों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। मार्च १९६७ से १९७० तक ४००० विधायकों में से १,४०० विधायकों ने दल-बदलें। सबसे अधिक दल-बदल काँग्रेस में हुआ।

दल-बदल के प्रेरक कारण

राजनैतिक दलों की आंतरिक गुटबंदियों के कारण भी दल-बदल को भारी प्रोत्साहन मिला। पद, धन, स्तर आदि के कारण भी दल-बदल हुए। राजनीति में व्याप्त ढोंग, गरीबी, व अज्ञानता के कारण भी राजनैतिक वास्तविकताओं के बीच बड़ी खाई पैदा हुई जिसे पाटना कठिन हो गया।

दल-बदल के आधारभूत कारणों पर प्रकाश डालते हुए प्रो.रजनी कोठारी के अनुसार दल-बदल में दो बातों का मुख्य हाथ रहा-प्रथम चुनाव के पहले टिकिट का बँटवारा और दूसरा चुनाव के बाद मंत्रीमंडल का गठन। ये नई बात नहीं थी १९६७ में और बाद में जितनी आसानी से लोग कांग्रेस छोड़ देते थे, उतना पहले कभी नहीं देखा गया था।

दल-बदल की प्रक्रिया के अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक पहलू हैं। राजनीतिज्ञों, विधायकों, सांसदों की कितनी ही मानसिक कुठाओं और अतृप्त इच्छाओं का इतिहास है जिसे भलीभाँति जाना जा सकता है।

अतः दल-बदल की एक समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचना करना जरूरी है।

१. सत्ता की स्वार्थ लिप्सा के लिए दल-बदल- सत्ता के लिए संघर्ष राजनीतिक दलबंदी का एक प्रमुख लक्षण है। राजनैतिक दल सत्ता हथियाने के लिए अनेक अशोभनीय तरीके अपनाते हैं। इसी कारण आयाराम-गयाराम की राजनीति का विकास हुआ।

दल-बदल का सबसे बड़ा कारण सत्ता पाना और पद प्रलोभन है। १९८२

में हरियाणा में दल-बदल का भाव २०,००० रू. से ४०,००० रू. तक आँका जा रहा था। हरियाणा के राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को भेजी गई रिपोर्ट में उक्त उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

सन् १९६९, १९७८, १९७९ में सत्ता परिवर्तन के उदाहरण दिये गये हैं। सन् १९७९ में चरणसिंह समर्थकों द्वारा जनता पार्टी को तोड़कर जनता(एस) का गठन और बाद में कांग्रेस (एस) और अन्य दलों की सहायता से सरकार बनाने के पीछे स्वार्थ-लिप्सा की भावना ही प्रमुख रही।

नवम्बर १९९० में चौधरी देवीलाल और चन्द्रशेखर द्वारा अपने समर्थकों सहित अलग होकर समाजवादी दल का गठन कर कांग्रेस (इ) की सहायता से सरकार बनाने का निर्णय इसी सत्ता की राजनीति का ही अंग था।

सन् १९९५ में आंध्रप्रदेश में चंद्राबाबू नायडू ने मुख्यमंत्री बनने की महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए, रामाराव को अपदस्थ कर तेलगू देशम् का ही विभाजन कर दिया।

सन् १९९७ में भाजपा ने उत्तरप्रदेश में कल्याण सिंह की सरकार बनाने के लिए कांग्रेस तथा बहुजन समाजवादी पार्टी में विभाजन कराया।

२. भीतर की गुटबंदी और भाई-भतीजावाद – विभिन्न गुटों या धड़ों के बीच सत्ता संघर्ष के लिए गुटबंदी की जाती है।

रजनी कोठारी का अभिमत है कि सत्ताधारी और विपक्ष दो गुट होते हैं। उनके समर्थक सत्ता प्राप्ति के लिए क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद आदी का सहारा लेते है। गुटबंदी और प्रशासन में बढ़ते भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद इन संघर्षों के कारण होते हैं।

३. दलीय दलबदल – १९६९ में कांग्रेस का विभाजन हुआ। १९७२ में सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी अस्तित्व में आई। इस कारण दलबंदी के कारण दलों में विभाजन होना स्वाभाविक है।

४. व्यक्तित्व संघर्ष– वरिष्ठ सदस्यों की उपेक्षा और व्यक्तित्व संघर्ष के कारण भी दल-बदल को प्रोत्साहन मिलता है। कई बार पार्टी टिकिटों के असमान बँटवारें के कारण भी दल-बदल को प्रोत्साहन मिलता है।

५. राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति – दल-बदल की अभिप्रेरक शक्ति में राजनैतिक संभावनाएँ बढ़ती है। आर्थिक लाभ तथा अन्य आधारों पर दल-बदल करना सामान्य बात हो गई है। दल-बदल करके भी लाभ के पद को काबिज़ किया जाता है।

मंत्री पद पर आसीन होने पर कई विधायक अन्य अप्राप्य जीवन की सुख-सुविधाओं और विलास सामग्रियों का स्वयं उपभोग करने के साथ-साथ दूसरों को भी व्यापक संरक्षण प्रदान करने और उनके स्वार्थ साधने की स्थिति में सहज हो जाते हैं।

६. पद एवं सम्मान की लालसा – सत्ता का मोह और पद लोलुपता ने देश के राजनैतिक वातावरण को इतना खराब और दूषित बना दिया है कि विधायकों की दृष्टि में सिद्धान्त, आदर्श, नैतिकता आदि का महत्व कम हो गया है।

७. सशक्त एवं महान नेतृत्व का अभाव – दलीय राजनीति व्यक्तित्व नेतृत्व पर आधारित रही है।

आज नेतृत्व का आधार न तो लोकसेवा है न ही निर्वाचकों में लोकप्रियता। अतः लोकसभा और विधानसभाओं के निर्वाचित कई सदस्यों में मौलिक निष्ठा का अभाव है और वे विशुद्ध रूप से राजनीतिक अवसरवाद की भावना से कार्य कर रहे हैं। सत्ता के लोभ में उन्हें दल-बदलने में भी कोई संकोच नहीं होता। केवल निर्वाचनों के अवसर पर ही राजनीतिक दल धन खर्च करके जनता को हतप्रभ करने में प्रयासरत रहते हैं।

८. प्रभावशाली नेतृत्व का अभाव –पूर्व में प्रभावशाली व्यक्तित्वों का लोप हो चुका है। इसलिए अब जो भी नेतृत्व सामने आ रहे हैं उनके व्यक्तित्व में प्रभावशाली नेता दिखाई नहीं देते, जो दलों के भीतर दल पर नियंत्रण कर सके।

९. जनता की उदासीनता – आज जनता में भी नेतृत्व के प्रति अब कोई विशेष आकर्षण नहीं रहा है। आम जनता नेतृत्व के प्रति उदासीन होती जा रही हैं।

१०. राजनैतिक दलों में ध्रुवीकरण का अभाव –डॉ. सुभाष कश्यप लिखते हैं कि जिस आसानी से नेता एक दल का परित्याग कर दूसरे दल में शामिल होते हैं इससे स्पष्ट है कि राजनैतिक दलों में सिद्धान्त जैसी कोई बात नजर नहीं आती। विभिन्न दलों में कोई वास्तविक ध्रुवीकरण नहीं है। उनके मतभेदों का स्वरूप भी धुंधला है।

दल-बदल के परिणाम:

१. दल-बदल के कारण शासन में अस्थिरता पैदा होती है। जिससे आगामी विकासगामी प्रवृत्तियों में शिथिलता उत्पन्न होती है।

२. दुर्बल मिली-जुली सरकारों का निर्माण -संविद सरकारों के विभिन्न घटकों में कोई ताल-मेल नहीं रहता। मंत्रीमंडल में एकता का अभाव दिखाई देता है। जो भी गठबंधन बना लिये जाते हैं जो कालान्तर के बाद अस्थिर होने लगते हैं।

३. नौकरशाही के प्रभाव में वृद्धि- दल-बदल के कारण प्रशासनिक रिक्तता, राजनैतिक अनिश्चितता का प्रभाव बढ़ता रहा है।

४. मंत्रिमंडलों में अनावश्यक विस्तार- उदाहरण के लिए राव वीरेन्द्रसिंह मंत्री मंडल में २३ मंत्रियों का विस्तार किया गया।

५. अल्पमत सरकारों का निर्माण- दल-बदल के कारण पंजाब, पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में अल्पमत सरकारों का निर्माण किया गया।

६. राजनैतिक दलों का विघटन- दल-बदल के कारण राजनैतिक दलों में बिखराव और विघटन की प्रक्रिया जारी रही।

७. सिद्धांतहीन और नैतिकता शून्य राजनीति का सूत्रपात हुआ।

८. विकास कार्यों में बाधाएँ पैदा होती गई।

इस प्रकार शासन व्यवस्था सुचारू रूप से जारी नहीं रही। जब लोकप्रिय सदन के चुनाव में किसी एक राजनैतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं होता, तब त्रिशंकु लोकसभा या विधानसभाओं में अनावश्यक गठबंधन की स्थितियाँ पैदा होने लगती हैं। इस प्रकार दल-बदल की बीमारी ने राष्ट्रीय दलों की जड़े कमजोर बना दी। क्षेत्रीय दलों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि होती गई।

दल-बदल कानून की आवश्यकता क्यूँ?

भारत में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है जिसमें दलों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु स्वतंत्रता के बाद देखा गया कि जनादेश की अनदेखी होने लगी। विधायकों या सांसदों की जोड़-तोड़ से सरकारें बनने व गिरने लगी। इस प्रकार की घटनाओं ने राजनैतिक अस्थिरता को जन्म दिया। ७० के दशक में यह देखने में आया कि लोगों ने एक दिन में तीन बार दल बदलें। हरियाणा के एक विधायक गयालाल ने ३० अक्टूबर १९६७ को एक दिन में ३ बार दल बदला। तब से आयाराम-गयाराम की कहावत प्रचलित हुई।

इसके बाद जनादेश का उल्लंघन करने वाले सदस्यों को चुनाव में भाग लेने से रोकने की आवश्यकता महसूस होने लगी। परिणामस्वरूप सन् १९८५ में प्रधान मंत्री राजीव गाँधी द्वारा ५२ वें संविधान संशोधन के रूप में दल-बदल कानून अस्तित्व में लाया गया। उक्त कानून में कुछ कमियों को देखते हुए कुछ वर्ष बाद सन् २००३ में ९१ वां संविधान संशोधन पारित किया गया जिसमें निम्न प्रावधान किये गये:

१. दल-बदल करने वाले सदस्यों की सदस्यता स्वतः समाप्त हो जायेगी।

२. दल-बदल करने वाले सदस्य किसी भी प्रकार का सरकारी/लाभ का पद प्राप्त नहीं कर सकेंगे।
३. सदन की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पुनः चुनाव जीतना होगा।
४. मंत्रिपरिषद का आकार केन्द्र एवं बड़े राज्यों लोकप्रिय सदन की सदस्य संख्या का १५ प्रतिशत से अधिक नहीं होगा।

दल-बदल विरोधी कानून निम्न आधार पर लागू नहीं होगाः

१. यदि सदन के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई सदस्य दल विभाजन के परिणाम स्वरूप उसकी सदस्यता का परित्याग करते हैं या दो तिहाई सदस्य किसी अन्य राजनीतिक दल में शामिल हो जाते हैं और अलग समूह के रूप में कार्य करने का निर्णय करते हैं।
२. लोकसभा एवं विधानसभा के अध्यक्ष और राज्यसभा का उपसभापति चाहे तो अपने निर्वाचन के बाद अपनी पार्टी से इस्तीफ़ा दे सकते है किन्तु एक बार इस्तीफ़ा देने के बाद पर पर रहते हुए वे पुनः पार्टी में शामिल होते है तो अयोग्य घोषित किये जाएंगे। इसका निर्णय पीठासीन अधिकारी करेगा।
३. यदि किसी विधायक अथवा सांसद को पार्टी द्वारा निष्कासित किया जाए।
४. यदि किसी राजनीतिक पार्टी का अन्य दल में विलय हो रहा हो और यदि उसका कोई सदस्य उससे बाहर रहना चाहता है तो उस पर दल-बदल कानून लागू नहीं होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१. सुभाष कश्यप- दल-बदल और राज्यों की राजनीति मीनाक्षी, मेरठ,१९७०
२. गोस्वामी भालचंद्र-दल-बदल-दशा और दिशा पंचशील, जयपुर १९९९
३. डॉ. जैन पुखराज-दल-बदल की राजनीति-२०००
४. विनोद श्रीवास्तव-दल-बदल अधिनियम, छिन्न-भिन्न होती राजनैतिक निष्ठा, सरिता, दिसम्बर १९९७
५. डॉ. चेतना नेहरा- लोकतंत्र और दल-बदल अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली।

****